योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवॉई 283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष-57, अंक-4
जुलाई 2024

प्रकाशन तिथि: 01-07-2024
मूल्य-एक प्रति:25/-, वार्षिक :250/-
आजीवन (10 वर्ष) 1500/-

अमृतकण

आददीत परां विद्या प्रयत्नादवरादपि।
अन्त्यादपि पर धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

(महर्षि मनु)

अर्थात् स्त्री रत्न को भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाण्डाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतेषु चात्मनं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।।

(मनुस्मृति 12/91)

अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जीवों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण जीवों को देखता हुआ आत्मयाजी (ब्रह्मार्पण न्याय से ज्योतिष्टोमादि करने वाला) ब्रह्मत्व अर्थात् मुक्ति को पाता है।

◆ ◆ ◆

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं।
व्यापारैर्बहु कार्यभार गुरूभिर्कालों न विज्ञायते।।
ज्ञात्वा जन्म–जरा–विपत्ति–मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरां उन्मत्तभूतं जगत्।। (भर्तृहरि)

रोज–रोज सूर्य के निकलने और छिप जाने से आयु का एक–एक दिन क्षीण होता जा रहा है व्यापार और कार्यभार की अधिकता से समय का ज्ञान नहीं हो पाता। रोज–रोज मनुष्य जरा जन्म–मरण की सूचनायें पाता रहता है किन्तु फिर भी मन में कुछ भय उत्पन्न नहीं होता, वह मोहमयी प्रमाद मदिरा को पी कर पागल सा घूम रहा है। यही कारण है कि अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म, मदान्धों की तरह बीतता चला जा रहा है। किन्तु इसकी दुर्लभता की चेतावनी का स्मरण को नहीं हो पाता।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नेति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थात् शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप का योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 57 जुलाई अंक 4

यो देवो अग्नौ यो अप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः।।

जो सर्वशक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म परमदेव अग्नि में हैं, जो जल में हैं, जो समस्त लोको में अन्तर्यामी रूप से प्रवष्टि हो रहे हैं, जो औषधियों में हैं और जो वनस्पतियों में हैं–अर्थात जो सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनका अनेक प्रकार से पहले वर्णन कर आये हैं, उन परमदव परमात्मा को नमस्कार है। नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापकः
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादकः
आचार्य (डा0) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादकः
डा0 विजय सिंह एवं दिनेश शर्मा

लेख की सूची

1.	विशेष लेख–योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्रीमद् भागवत में योग चर्चा	10
4.	भगवत् प्राप्ति–अन्तूराम यादव	15
5.	यौगिक तथा आयुर्वेदिय संशधोन चिकित्सा	19
6.	देह और आत्मा इनका अन्योन्य विलक्षण	23
7.	योगयोगश्वर महाप्रभु श्री रामलाल	25
8.	स्वाध्याय में सहायक सिद्ध योग	30
9.	योग सिद्धाश्रम मण्डो (हि0प्र0) में विशाल योग शिविर–अनिल दुवे	31
10.	योग साधन आश्रम ऋषीकेश का वार्षिक उत्सव	33
11.	काली दाढ़ी वाले और सफेद धोती कुर्ते वाले	35

विशेष लेख-

दीक्षा तत्व

(योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में 'दीक्षा' शब्द का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में होता है। दीक्षा शब्द के अन्दर 'दीयते' और 'क्षीयते' दो क्रियाओं का प्रयोग स्पष्ट रूप से आभाषित होता है। यदि हम दीक्षा का अर्थ संस्कृत व्याकरण के माध्यम से ठीक–ठीक करें तो "दीयते ज्ञानम् क्षीयते तदावरणंम् च" स्पष्ट रूपेण प्रस्फुटित होता है।

अर्थात्–जिस क्रिया के द्वारा ज्ञान, धर्म, सत्य शक्ति को प्रदान किया जाय और उनके बीच की रूकावट को खत्म किया जाय उसका नाम शास्त्रीय परिभाषा में दीक्षा कहा गया है। वस्तुतः विचार करके देखा जाय तो दीयते और क्षीयते का प्रयोग मनुष्य की हर हरकत के द्वारा प्रतिरक्षण होता रहता है। मनुष्य अपनी वाणी के द्वारा सत्य का उपदेश करता है और सत्योपदेश के विपरीत विरोधी तत्वों को नष्ट करता है। यहाँ पर दीयते और क्षीयते दोनों क्रियाओं का सही प्रयोग सहज में ही दिखलाई दे रहा है। अपनी वाक शक्ति के द्वारा मनुष्य जैसे सत्य ज्ञान प्रदान करता है और विपरीत भावों का क्षय करता है इसी प्रकार वह अपनी आँखों से सत्य सुमग मार्ग का दर्शन करता है और कंटकाकीर्ण अहितकर कुमार्ग का निवारण करता है। यहाँ नेत्र दृष्टि के द्वारा भी यही उपरोक्त दोनों क्रियायें स्पष्ट रूपेण आभाषित होती हैं। कहीं किसी स्थान पर एक बच्चा अपनी माँ की स्मृति में रूदन कर रहा है और उसकी माँ जल्दी से आकर उसको उठाकर कंठ से लगा लेती है। माँ के प्यार के स्पर्श को पाकर बच्चा दीयते और क्षीयते दोनों क्रियाओं का अपने मन में अनुभ्व करता है। बच्चे को माँ के प्यार भरे स्पर्श ने एक विशेष आनन्द को दिया और रोदन का कष्ट जो उस बालक के मन में हो रहा था तत्काल क्षय भी हो गया। इसी प्रकार पर मनुष्य का मन भी हर समय इन्ही दोनों क्रियाओं के अनुसार ही क्रियान्वित रहा करता है। जहाँ पर मनुष्य का मन किसी के प्रति शुभ विचार को धारण करता है, वहीं पर एक प्रकार से शुभ भावों का प्रदान ही है और ठीक इसके विपरीत इन शुभ भावों के आते ही दुर्भावों का निष्कासन भी साथ ही हो जाना बिल्कुल अनिवार्य है यह क्रिया हर समय प्राणी मात्र में होती रहती है। इसी के आधार पर हमारे शास्त्रों में एक निर्णायात्मक सिद्धान्त का आदेश दिया कि "मातृवान्, पित्वान्, आचार्यवान्, पुरूषोवेद" अर्थात् माँ वाला व्यक्ति परमात्मा को पा जाता है। सत्य सिद्धान्त यह रहा कि "मातृवान पुरूषोवेद" माँ, जन्म लेने के बाद अपने बच्चे के मन को इतना अधिक खुश कर देती है

कि उसके मन से मिथ्या भ्रमों का नाश पहले से ही होता चला आता है। माता अपनी वाणी से बच्चे को कहती है "शुद्धोसि बुद्धोसि निरन्जनोसि संसार माया परिवर्जितोसि" अर्थात्–हे बेटा! तू शुद्ध–बुद्ध निरंजन है और संसार की माया कीच से बिल्कुल बचा हुआ है। माता का यह उपदेश उस बच्चे को अमरत्व का दाता बन जाता है। उसके अन्दर नीच कुत्सित भावो का लवलेश भी नहीं रहता। माता के उपदेशों ने 'अहं ब्रह्म अस्मि' के भावों को पूर्णरूपेण पुष्ट कर डाला। इस शिक्षा के बाद 'पितृवान् पुरूषोवेद' पिता वाला परमात्मा को जानता है। माता की शिक्षा के बाद पिता अपने बच्चे के नित्य नैमित्यिक कर्मो का उपदेश करता है और माता के दिये उपदेश को क्रियात्मक रूप में परिणित करा देता है, पिता के उपदेशों के द्वारा उसके कराये हुए क्रियात्मक जीवन के द्वारा ब्रह्मचारी आचार्य चरणो की सेवा के लायक बन गया और आचार्यवान् 'पुरूषोवेद' क्रिया को पूर्णरूपेण प्रगट कर लेने का अधिकार प्राप्त कर लिया। यह एक प्रकार से स्पष्टरूपेण सत्याधान ही है। कौन पुरूष कितना शक्तिपात कर सकता है, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। 'स्वयं शक्तो विनियिषु शक्तिमा धातुम् समर्थो भवति'। अर्थात्–जो स्वयं सामर्थ्यवान है, वही दूसरो को शक्ति दे सकता है।

स्वयं तीर्णः परान् तारयति।'

जो आप तैरना जानता है वही दूसरों को तैरा भी सकता है। जो आप तैरना नहीं जानता और दूसरों की चेष्टा करता है, उसके लिए वही सिद्धान्त लागू रहेंगा। सत्स्वयं निमग्नः परान्अपि निमज्जयति।

जो स्वयं ही डूब रहा है, वह दूसरों को क्या बचायेगा? प्रत्युत एक दो को साथ लेकर डूब ही जायेगा। इसलिये शक्तिपात करने का अधिकार, दूसरे शब्दों में दीक्षा देने का अधिकार केवल मात्र सामर्थ्यवान गुरूदेव को ही है। तन्त्र शास्त्रों में इस प्रकार का उपदेश भी है कि–

मंत्र चैतन्य विज्ञाता गुरूरुक्तः स्वयं भुवा।

मंत्र चैतन्य को जानने वाला, मंत्र के अन्दर चैतन्यत्व प्रदान करने वाला गुरू ही गुरू कहा गया है। इस प्रकार के गुरू का स्पष्टीकरण करते हुए दूसरे स्थान पर और भी स्पष्ट कह दिया–

गुरोर्यस्यैव संस्पर्शात् परानन्दभिजायते।
गुरूं तमेव वृणुयात् नापरं मतिमान्नरः।।

अर्थात्–जिसके स्पर्श मात्र से अपने शरीर में परमानन्द की अनुभूमि हो, साधक को चाहिये कि उसको ही अपना गुरू बनाये, अन्य सर्वसाधारण को नहीं। गुरू की वाणी के अन्दर ताकत होती है। गुरू के शब्दों के अन्दर ताकत होती है। गुरू के स्पर्श के अन्दर ताकत होती है। गुरू के मन की ताकत शिष्यों को हर समय भला किया करती है। जिस

गुरू के अन्दर से इस प्रकार की शक्ति का बराबर निष्काषन होता रहता है, ऐसा गुरू स्वयं शिव रूप है। 'योग वशिष्ठ' में महर्षि वशिष्ठ जी ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया है–

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात्, कृपया शिष्य देहके
जनयेद्यः समावेश शांभवं सहि दाक्षिकः।।

अर्थात्–जिसके दर्शन, स्पर्शन एवं शब्द से शिष्य के शरीर में शक्ति संचरित हो वह गुरू स्वयं शिव का स्वरूप है और शक्तिपात का अधिकारी है। गुरूदेव अपने शिष्यों को योग दीक्षा देते हुए स्पर्श, दृष्टि, मनन एवं वाणी के द्वारा दीक्षा देकर शिष्यों के संताप को दूर किया करते हैं। आज कालिकाल के समय में शिष्य–संतापहारी गुरू की प्राप्ति बड़ी कठिनता से हो पाती है। इस प्रकार के गुरूओं की कोई कमी नहीं जो अपने स्वार्थों को दृष्टिगत रखकर शिष्य संतापहारी तो बने रहते हैं, किन्तु अपने शिष्यों के कल्याण का उनको कोई ख्याल नहीं रहता। गुरूदेव द्वारा दी जाने वाली दीक्षाओं का वर्णन तन्त्र शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से है।

स्पर्श–दीक्षा

यथा पक्षी स्वपक्षाभ्यां शिशून संवर्धयेच्छनैः।
स्पर्श दीक्षापदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये।।

अर्थात्–जैसे पक्षी अपने पंखों के द्वारा स्पर्श करके अपने शिशुओं का संवर्धन किया करता है और समय आने पर उनको प्रकट कर देता है। इसी प्रकार से गुरूदेव स्पर्श के द्वारा अपने शिष्यों का संवर्धन करते हैं और उत्तरोत्तर वह स्पर्श–दीक्षा से प्राप्त हुई शक्ति उनको यथार्स शुद्ध स्थिति में लाकर रखती है।

दृग–दीक्षा

स्वापत्यानि यथा मत्स्यों वीक्षणेनैव पोषयेत्
दृग्भ्यां दीक्षोपदेशश्च तादृशः परमेश्वरि।।

अर्थात्–जिस प्रकार से मत्स्य अपनी दृष्टि के द्वारा अपने बच्चों का पोषण किया करता है इसी प्रकार से गुरूदेव अपनी दृष्टि के द्वारा अपने शिष्यों का पोषण किया करते है।

मानस–दीक्षा

यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यानमात्रेण पोषयेत्।
वेध दीक्षोपदेशश्च मानुषस्य तथा विधः।।

अर्थात्–जिस प्रकार कछुआ चिन्तन मात्र से अपने बच्चों का रक्षण करता है। इसी प्रकार से गुरूदेव अपने मानस शुभ संकल्प के द्वारा अपने शिष्यों का पोषण किया करते

है। पुराणो में बहुत प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है।

शाम्भावी दीक्षा के विषय में तो बिल्कुल स्पष्ट कह दिया है–

गुरोरालोक मात्रेण स्पर्शात्संभाषणतादपि।
संद्यः संज्ञा भवेज्जन्तो दीक्षा साशाम्भवी मता।।

अर्थात्–जिसके देखेने मात्र से स्पर्शमात्र से या वाणी के उच्चारण मात्र ये तत्काल शक्ति संचरित हो जाती है वही शाम्वी दीक्षा कहलाती है।

जिसके द्वारा शक्तिपात नहीं होता वस्तुतः वह गुरू कहलाने का अधिकारी नहीं जब तक शिष्य के शरीर में शक्ति संचार नहीं होता तब तक उस शिष्य की सभी क्रियायें उसके प्रयास मात्र ही हैं। उनका फल केवल मात्र इतना ही होता है, जिससे पुण्य वृद्धि होती रहे और मनुष्य शक्तिपात का अधिकारी बन जाय। वस्तुतः–

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहर्मति।
यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र सिद्धिर्न जायते।।

अर्थात्–जब तक मनुष्य अपनी विशेष प्रकार की साधनायें करता हुआ शक्तिपाठ का अधिकारी नहीं बनता तब तक उसकी सब साधनायें पुण्य–वद्धिकर हैं। साधना करने के फलस्वरूप चाहे वह व्यक्ति ज्ञान धारण प्रधान क्ययों न हो जब तक सिद्ध संगति की प्राप्त नहीं करता और उसका अनुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह संसार से पार नहीं हो सकता।

प्रावाहिक दीक्षायें

प्रवाहान्तरगत होने वाली दीक्षाओं को साम्प्रदायिक दीक्षायें भी कहा जा सकता है। महापुरूष लोग अपनी–अपनी विचारधाराओं को संसार के सामने रखते हैं। किन्तु शक्ति प्रवाह का उनका मूल–स्त्रोत एक ही स्थान से चलता है। जब मनुष्य उनके प्रभाव से प्रभावित हो करके उस मार्ग का अनुमागी बनता है तो उनको आदि सिद्ध उस आचार्य की शक्ति को प्राप्त होती है जिसको पा करके ही कोई–कोई सुकृती लोग अपने चरम लक्ष्मी की ओर बढ़ जाते हैं। अतः परम करूणार्णाव श्री गुरूदेव के प्यारे चरण–कमलों को प्राप्त करके उस नित्य चेतन से अपना अकृतिम सम्बन्ध स्थापित कर ही लेना चाहिए ताकि साधक प्रयन्त करता हुआ परम श्रेय का भाजन हो जाय और "स्वयं तीर्णः परान्तारयति' का अधिकारी बन सके।

सम्पादकीय-

गुरू पूर्णिमा का अमृत पर्व

(आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज)

हमारे देश में गुरू पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा–व्यास पूजा का पावन पर्व अषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्भुत ज्ञान राशि वितरण गुरू परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरूदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति इस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरू मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरू की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है कि–

गुरू गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरू आपनों गोविन्द दियो लखाय।।

गुरू कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरूदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरू की महिमा गाई है। गुरू शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। 'गृहाकित उपदिशदि धर्ममिमति–गुरूः' जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरू है। "यदा गीर्यत स्तूयते देव–गन्धर्वा दिमिरिति गुरूः।" अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं। वह गुरू हैं। जो गुरू वही पूर्ण है। गुरू वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरूत्वाकर्षण है जीवों की अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूणत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। "सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व–(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहॉ जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।" अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अथव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वैसः' कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्त्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमी रसरूप ब्रह्म हैं गुरू में अमृतव है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरूदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरू पूर्ण

समर्थ होता है चेतना का महास्त्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय-समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते है, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पश से, लोकोत्त्र चरित्र से जीव कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरू शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव परम गुरू अर्थात् अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मते और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरू अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मन के शोधन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते है।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते है। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते है। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते है। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्धेश्य है। भगवान के इसी गुरूत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरू कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरू से मिलन सहसा संयोगवंश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उा आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथ परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मो की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते है। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरूषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरू रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का लिनके गुरूदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर 'मयि सर्वमिद प्रोतं सूत्रे मणित्रणा इवा' यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के दीदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्क की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रूंकार अन्धकार निवासक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरू है-ऐसा गुरुगीता का वचन है। "नास्ति त्वं गुरोः परम।" गुरूदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरू के प्रति पूर्ण समर्पण की जा काफी दुःसाध्य है। योग से जीवन और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरू भक्ति

से गुरू शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसलिए नित्य ही गुरू गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है–

नित्यं शुद्धं निराभास निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरू ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्य बोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरू की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरू की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए गुरूदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरूदेव स्वयं मंत्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मिक शरीर में अनुप्रवष्टि तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

"गुरू पूजा विहिनानाम् न सिद्धिः स्यादकदाचन"। जो गुरूदेव की पूजा अराधना नहीं करते तथा गुरूदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरूदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरूपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है। वही गुरूदेव का प्रिय भक्त होता है और उसे ही अन्तर्ज्ञार्न प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरू निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। इस बार गुरू पूर्णिमा 21 जुलाई 2024 को सम्पन्न होना है।

संसार

अधिकांश व्यक्ति संसार को दुःख और अशांति का घर समझते हैं। बहुत थोड़े व्यक्ति संसार को सुख और सौन्दर्य का धाम मानते हैं वस्तुतः संसार में सुख और दुःख दोनों होते हैं परन्तु दुःख की अपेक्षा सुख अधिक होता है। संसार का सुख या दुःख पूर्ण होना मनुष्य की अपनी मनः अवस्था पर निर्भर होता है, अतः संसार के वास्तविक स्वरूप को भली–भांति जान और समझकर अपने को संसार के योग्य और संसार को अपने योग्य बनाना कल्याण प्रद होता है।

लोग संसार कह निन्दा करते है। संसार की निन्दा करने की अपेक्षा उसका रहस्य जानना उत्तम है। लोग संसार की उपेक्षा करते हैं। उपेक्षा करने से उसका अध्ययन करना श्रेयस्कर है। लोग संसार का दुरूपयोग करते हैं, दुरूपयोग करने की अपेक्षा उसका सदुपयोग करना कल्याणकारी है।

श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक

।। ॐ श्रीराम लाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा

डा0 विजय सिंह

स्कन्ध बारह के आठवें अध्याय में मार्कण्डेय जी के ब्रह्मचर्य निष्ठा तपस्या से होकर भगवान नर–नारायण उन्हे साक्षात् दर्शन देने आये, की कथा कही गयी है। ज्ञान सम्पन्न मुनि के दिव्य स्तुति को सुनकर नर–नारायण ने प्रसन्न होकर कहा–ब्रह्मर्षि शिरोमणि! तुम चित्र की एकाग्रता तपस्या स्वाध्याय संयम और मेरी अनन्य भक्ति से सिद्ध हो गये हो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपना मनोवांछित वर मुझ से माँग लो।

मो मो ब्रह्मर्षि वयासि सिद्ध आत्मसमाधिना।
मयि भक्त्यानपायिन्या तपः स्वाध्याय संयमै।। 2.9.12.

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–आपकी जय हो, जय हो। आपकी आज्ञानुसार मैं आपसे वर माँगता हूँ। मैं आपकी वह माया देखना चाहता हूँ जिससेसभी अद्वितीय वस्तु ब्रहम में अनेको प्रकार के भेद–विभेद देखने लगते है। प्रभों ब्रह्मा–शंकर आदि देवगण्स योग साधना के द्वारा एकाग्र हुए मन से ही आपके दर्शन पाते हैं। आज आपने मेरे नेत्रों के सामने प्रकट होकर मुझे धन्य बनाया है।

गृहीत्वाजादयो यस्यश्री मत्पादाब्जदशनम्
मनसा सयोगपक्वेन समवान् मेऽक्षगोचरः।।5.9.12

भगवान नारायण मुसकराते हुये कहा–'ठीक है, ऐसा ही होगा'। वे अपने आश्राम बदरीवन को चले गये। मुनि के ह्रदय में प्रेम की ऐसी बाढ आ जाती कि वे उसके प्रवाह में डूबने–उतराने लगते, उन्हे इस बात की भी याद न रहती कि कब कहाँ किस प्रकार भगवान की पूजा करनी चाहिए?

एक दिन की बात है, सन्ध्या के समय कुत्रभद्र नदी के तटपर वे भगवान की उपासना में तन्मय हो रहे थे। अचानक बादल उसी समय बड़े जोर की आँधी चलने लगी। बड़े विकराल बादल आकाश में भयंकर आवाज के साथ मँडराने लगे। बिजली चमकने लगी, जल की मोटी–मोटी धारायें पृथ्वी पर गिरने लगी, चारों और जलमग्न हो उठा। मार्कण्डेय मुनि को ऐसा दिखायी पड़ा कि चारों ओर से समुद्र पृथ्वी को निर्मलता उमड़ा आ रहा है।

जब मार्कण्डेय जी ने देखा कि इस जल प्रलय से सारी पृथ्वी डूब गयी है। सब प्रकार के प्राणी तथा स्वंय वे भी अत्यन्त डूब गयी है। सब प्रकार के प्राणी तथा स्वंय वे भी अत्यन्त व्याकुल हो रहे है। तब वे उदास हो गये और साथ ही अत्यन्त भयवीत हो गये। उन्होने देखा प्रथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग ज्योर्तिमण्डल तथा तीनों लोक जल में डूब गये। मात्र वे ही बच रहे हैं उस समय वे पागल की भाँति भाग–भाग कर प्राण बचाने की चेष्टा कर रहे थे। वे भूख–प्यास से व्याकुल हो उठेलहरों के थपेड़े उनहें घायल कर रहे थे। वे अज्ञानान्धकार में पड़कर बेहोश हो गये। विष्णु भगवान की माया के चक्कर में मार्कण्डेय मुनि मोहित हो रहे थे। उस प्रलयकाल के समुद्र में भटकने हुये उन्हे सहस्त्रों वर्ष बीत गये तब अचानक उन्होने पृथ्वी के एक टीले पर एक छोटा बरगद का पेड़ देखा। बरगद के पेड़ में ईशान कोण पर एक डाल थी, उसमें पत्तों का दोना–सा बन गया था। उसी पर एक सुन्दर नन्हा शिशु लेटा हुआ था। उसके शरीर से उज्जवल छटा छिटक रही थी, जिससे आस–पास का अंधेरा दूर हो रहा था। बालक के नन्हे–नन्हें हाथों में बड़ी सुन्दर अँगुलिया थी। वह शिशु अपने दोनो हाँथों से एक चरण कमल को मुख में डालकर चूस रहा था। मार्कण्डेय मुनि यह दिव्य दृश्य देखकर अत्यन्त विस्मिय हो गये।

चावर्ङलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः।।25.9.12

उस दिव्य शिशु के दर्शन मात्र से मुनि की सारी थकावट जाती रही आनन्द से शरीर ह्रदय पुलकित हो गया। 'यह कौन है' यह जानने के लिए उस ओर जाने की इच्छा किया कि उस शिशु के श्वास के साथ उसके भीतर प्रवेश कर गये। पेट में पहुँच कर सब की सब वही सृष्टि देखी। जैसे प्रलय के पहले देख रहा था। शिशु के उदर में मुनि ने आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योर्तिमण्डल पर्वत, समुद्र द्वीप वर्ष, दिशाये, देवता, दैत्य, वन, देश, नदियाँ, नगर, खाने किसानों के गॉव, आश्रम, अनेक युग और कल्पों के भेद से युक्त काल आदि सब कुछ देखा। हिमालय पर्वत, वही पुष्प भद्रा नदी के तट पर अपना आश्रम देखा। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व को देखते–देखते ही वे उस दिव्य शिशु के श्वास के द्वारा बाहर आ गये और फिर प्रलय–कालीन समुद्र में गिर पड़े।

अब मार्कण्डेय मुनि शिशु रूप में क्रीड़ा कर रहे भगवान को आलिंगन करने के लिए आगे बढ़े।

परन्तु सैनिक जी! भगवान् केवल योगियों के ही नहीं, स्वयं योग के भी स्वामी और सबके हृदय में छिपे रहने वाले हैं। मुनि उनके पास पहुँच भी न पाये थे कि वे अन्तर्धान हो गये। उस शिशु के अर्न्तधान होते ही प्रलयकालीन दृश्य विलुप्त हो गया और मार्कण्डेय मुनि ने देखा कि मैं तो पहले के समान ही अपने आश्रम में बैठा हूँ।

तावत् से भगवान योगाधीशो गुहाशयः।
अन्तर्दध ऋषेः सहो यथेहानीशनिर्मिता।। 33.9.12
तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसम्प्लवः।
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमें पूर्ववत् स्थितः।। 34.9.12

मार्कण्डेय जी नारायण की योगमाया का वैभव अनुभव किया। अतः वे माया पति भगवान की शरण में स्थित हो गये। "वैभव योगमायायास्तमेव शरणं ययौ"। दसवें अध्याय में भगवान शंकर ने मारकण्डेय जी को वरदान किया सूत जी कहते है– जिस समय मार्कण्डेय जी समाहित अवस्था में थे उसी समय भगवान शंकर पार्वती जी के साथ नन्दी पर सवार आकाशमार्ग से वित्तरण करते हुये उसी ओर आये। भगवती पार्वती ने मार्कण्डेय जी को ध्यानमग्न देखा। उनका हृदय वात्सल्य –स्नेह से उमड़ पड़ा। वे भगवान शिव से बोली–भगवन! तनिक इस ब्राह्मण की ओर तो देखिये। इसका शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण शांत है। समस्त सिद्धियों के दाता आप हैं। कृपा करके आप इसकी तपस्या का प्रत्यक्ष फल दीजिये।

भगवान शंकर ने कहा– देवी! यह आकांक्षा रहित भगवान की भक्ति प्राप्त जन हैं। इन्हें कोई आकांक्षा नहीं है, फिर भी मैं इनके साथ बातचीत करूँगा, क्योंकि ये महात्मा पुरूष हैं। जीवमात्र के लिए सबसे बड़ा लाभ यही है कि संत समागम करे। भगवती पार्वती के साथ वे मार्कण्डेय मुनि के पास गये।

उस समय वे तन्मय थे, उन्हे अपने शरीर और जगत का कोई भान न था। उस समय वे यह न जान सके कि सारे विश्व के आत्मा स्वंय गौरी–शंकर पधारे हुये हैं। सर्वशक्तिमान कैलासपति अपनी योगमाया से मार्कण्डेय मुनि के हृदयाकांश में प्रकट हुये।

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया।
आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः।। 10.10.12

मार्कण्डेय मुनि ने देखा कि उन्हे ह्रदय में भगवान शंकर के दर्शन हो रहे हैं। तीन नेत्र, दस भुजायें, लम्बा, तगड़ा शरीर सूर्य के समान तेजस्वी है। शरीर पर बाघम्बर, हाथ में त्रिशूल खटवांग ढाल, रूद्राक्ष–माला, डमरू, खप्पर, तलवार, और धनुष धारण किये है। मुनि यह रूप देखकर विस्मित हो गये। यह क्या है? कहाँ से आया? इन वृत्तियों के उदय हे जाने से उन्होने अपनी समाधि खोल दी। आँखे खोलते ही साक्षात् तीनों लोक के एकमात्र गुरू भगवान शंकर पार्वती जी तथा गणों को देखा। उन्होने उनके चरणों में माथा टेककर प्रणाम किया। मार्कण्डेय जी ने विधिवत सभी का पूजन करके बोले सर्वव्यापक और शक्तिमान् प्रभो। आपकी शान्ति और सुख से ही सारे जगत में सुख शान्ति का विस्तार हो रहा है। प्रभो! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं सत्वगुण से युक्त त्रिगुणातीत सदाशिव स्वरूप को, रजोगुण युक्त सर्वप्रवर्तक स्वरूप तथा तमोगुणयुक्त अघोर स्वरूप को नमस्कार करता हूँ।

नमः शिवाय शान्ताय सत्वाय प्रमृडाय च।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे।। 10.17.12.

संतो के परम आश्रय शंकर जी की इस प्रकार स्तुति मार्कण्डेय जी ने किया, तब भगवान शंकर बड़े प्रसन्न–चित्त से हँसते हुये बोले–मार्कण्डेय जी। ब्रह्मा विष्णु तथा मैं वरदाताओं के स्वामी है, हम लोगों का दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। इसलिए तुम्हारी जो इच्छा हो, वही वर मुझसे से माँग लो। आप जैसे शांत महापुरूष मुझमें, विष्णु, में, ब्रह्मा में, अपने में और सब जीवों में अणुमात्र भी भेद नहीं देखते। इसलिए हम तुम्हारे जैसे महात्माओं की स्तुति और सेवा करते है। हम लोग उन ब्राह्मणों को ही नमस्कार करते है। जो चित्र की एकाग्रता तपस्या, स्वाध्याय धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा हमारे वेदमय शरीर को धारण करते है।

सूत जी कहते है–शौनकादि ऋषियों! मारकण्डेय जी चिरकाल तक विष्णु भगवान् की माया से भटक के बहुत थके हुये थे। भगवान शिव को कल्याणमयी वाणी का अमृतपान करने से उनके सारे क्लेश नष्ट हो गये।

मार्कण्डेय जी ने कहा–प्रभो! आपने स्वपनद्रष्टा के समान अपने मन से ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की है और इसमें स्वंय प्रवेश करके कर्ता न होने पर भी कर्म करने वाले गुणों के द्वारा कर्ता के समान प्रतीत होते है। भगवान! आप ही समस्त ज्ञान के मूल केवल अद्वितीय ब्रह्मा हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अनन्त! आपके श्रेष्ठ दर्शन से बढ़कर कौन सी वस्तु है, जिसे मैं वरदान के रूप में माँगू? मनुष्य आपके दर्शन से ही पूर्णकाम और सत्यसंकल्प हो जाता है अतः आपसे यही वर माँगता हूँ कि भगवान में उनके शरणागत भक्तों में और आपसे मेरी अविरल भक्ति सदा–सर्वदा बनी रहे।

भगवान शंकर ने कहा–महर्षे। तुम्हारी सारी कामनायें पूर्ण हों इन्द्रियातीत परमात्मा में तुम्हारी अनन्य भक्ति सदा–सर्वदा बनी रहे। कल्पपर्यन्त तुम्हारा पवित्र यश फैले और तुम अजर एवं अमर हो जाओ। तुम्हे भूत, भविष्य और वर्तमान के समस्त विशेष ज्ञानों का अधि–ष्ठान रूप ज्ञान ओर वैराग्य युक्त स्वरूपस्थिति की प्राप्ती हो जाय। तुम्हे पुराण का आचार्यत्व भी प्राप्त हो। भगवती पार्वती एवं समस्त गणों सहित भगवान शंकर ऐसा वरदान देकर वहाँ से चले गये।

मार्कण्डेय मुनि को उनके महायोग का परमफल प्राप्त हो गया। वे भगवान के अनन्य प्रेमी हो गये। अब भी वे पृथ्वी पर विचरण किया करते है।

सोऽप्यवाप्रमहायोग महिमा भार्गवोत्तमः।
विचरत्यघुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां रातः।। 39.10.12

।। ॐ श्रीराम लाल प्रभवे नमः।।

भगवत प्राप्ति

अन्तूराम यादव
प्रयागराज

प्रातः स्मरणीय हमारे आप के प्राण धन, सर्व समर्थ, सर्वशक्तिमान, अनन्तर्यामी, करुणा सागर भक्तवत्सल योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरूदेव एवं श्री सदगुरूदेव भगवान के पावन कमलवत् चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम। सभी आदरणीय भाई–बहनों को इस छोटे भाई का बारम्बार सादर जयगुरूदेव।

एक बार किसी ने एक सन्त से पूछा कि महाराज! आपने अपना पूरा जीवन भजन, ध्यान साधना में लगा दिया तो क्या आपको ईश्वर की प्राप्ति हो गई? उस सन्त ने कहा कि अभी तक तो ईश्वर की प्राप्ति नहीं हुई परन्तु उस दिशा में प्रयत्नशील हूँ। इस संबध में एक सच्ची घटना का उल्लेख कर देना उचित समझ रहा हूँ।

घटना बहुत पुरानी है। कानपुर देहात के एक सज्जन हमारे गुरूदेव के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। गुरूदेव के दर्शन के लिए वे साईकिल से सिद्धगुफा के लिए प्रस्थान किये। कई दिनों की यात्रा करते हुए अन्ततोगत्वा वे रात के लगभग दस बजे सिद्धगुफा के निकट पहुँच गये आश्रम के मुख्य द्वार से पहले पुलिया पर उन्होने एक व्यक्ति को देखा। कानपुर के उस सज्जन ने पुलिया पर बैठे उस व्यक्ति से पूछा कि सिद्धगुफा आश्रम के व्यवस्थापक गुरूदेव से मैं मिलना चाहता हूँ। पुलिया पर बैठे व्यक्ति ने कहा कि गुरूजी तो इस समय विश्राम कर रहे होंगे, तुम तुरन्त जाओ हाथ–पैर धोकर पंगत में बैठकर भोजन कर लो सुबह गुरूजी से मिल लेना।

सुबह नित्यकर्म से निर्वत होकर उस सज्जन ने आश्रम के एक ब्रहमचारी से पूछा–मैं गुरूजी से मिलना चाहता हूँ। उस ब्रहमचारी ने बताया कि गुरूजी ने तो कई महीने पहिले अपना शरीर छोड़ दिया। यह सुनकर वे बहुत दुखित हुए और निराश भी उन्होने सोचा कि गुरूजी के दर्शन तो नहीं हो पाये, चलूँ गुफा का ही दर्शन कर लूँ। जैसे वे गुफा के अन्दर गये, वहाँ विराजमान स्वरूप को देखकर वे चौंक गये। गुफा में बैठे एक भक्त से उन्होने

यह स्वरूप किसका है? उस भक्त ने बताया ये हमारे गुरूदेव का स्वरूप है जो अब भौतक रूप से इस धरा–धाम पर नहीं है। कानपुर के उस सज्जन ने कहा कि यही तो कल रात दस बजे आश्रम के बाहर पुलिया पर मुझे मिले थे और उन्होने ने ही मुझसे कहां था कि जाओ पहले भोजन कर लो, सुबह गुरूजी से मिल लेना। अब जरा सोचें, गुरूदेव से मिलने के बावजूद भी कानपुर के सज्जन गुरूदेव से मिलने के लिए उन्हें क्यों ढूढ़ रहे है? वह इसलिए कि उस सज्जन को यह ज्ञान नहीं था कि गुरूदेव का स्वरूप क्या है? उसी प्रकार हो सकता है ईश्वर के स्वरूप से अनजान उस सन्त को ईश्वर मिल गये हों। फिर भी ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। भाई और बहनों, ईश्वर का स्वरूप क्या है और ईश्वर की प्राप्ति क्या होती है, आइए इन बिन्दुओं पर तनिक विचार करें–

श्री गीता के छठवें अध्याय का आठवाँ श्लोक इस बात की ओर संकेत करता है कि परमात्मा या ईश्वर की प्राप्ति किसे कहते हैं और परमात्मा को प्राप्त पुरूष के लक्षण क्या है? श्लोक इस प्रकार है–

''ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचन''।।

ज्ञान क्या है, विज्ञान क्या हैं और ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा किसे कहते हैं, आइए सबसे पहले इस पर विचार कर लिया जाय। परमात्मा के निर्गुण–निराकार तत्व के प्रभाव एवं उसके रहस्य, महत्व आदि के यथार्थ ज्ञान को "ज्ञान" कहते हैं। परमात्मा के सगुण–साकार तत्व की लीला, रहस्य, महत्व, गुण और प्रभाव आदि के यथार्थ ज्ञान को "विज्ञान" कहते हैं। जिस पुरूष को परमात्मा के निर्गुण–सगुण, निराकार–साकार तत्व की भलीभाँति ज्ञान हो गया है, जिसका अन्तःकरण उपरोक्त दोनों तत्वों के यथार्थ ज्ञान से भलीभाँति तृप्त हो गया है, जिसमें अब कुछ भी पाने या जानने की इच्छा शेष नहीं रहती, वह पुरूष "ज्ञान विज्ञान तृप्ततात्मा" कहाँ जाता है।

अब आइये श्लोक के अर्थ पर विचार करे। जिसका अन्तः करण ज्ञान–विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकार रहित है, अर्थात् जिस प्रकार लोहार लोहे की निहाई पर लोहा रखकर हथौड़ा कूटता है और कूटते समय निहाई बार–बार चोट पड़ती है, फिर भी निहाई बिना हिल–डुले बार–बार चोट सहती रहती है। उसी प्रकार जो पुरूष बड़े से बड़े दुःखों के आ जाने पर एवं कठिन से कठिन विपरीत परिस्थति में भी तनिक विचलित नहीं होता बल्कि चट्टान की तरह खड़ा रहता है और जिसके अन्तः करण में तनिक भी विकार उत्पन्न नहीं होता है। जिसकी इन्द्रियाँ भली–भाँति उसके वश में हैं, अर्थात् इन्द्रियों पाँचों विषय–शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध पर जिसका पूर्ण नियंत्रण है और जो स्वर्ण में आसक्त नहीं होता एवं मिट्टी –पत्थर से द्वेष नहीं करता, ऐसी समभाव की दिव्य स्थिति को प्राप्त योगी को "युक्त" यानि उस ईश्वर की प्राप्ति हो गई है, ऐसा कहाँ जाता है।

किसी ने प्रश्न किया कि ईश्वर की प्राप्ति हो गई, ऐसा कहाँ जाता है लेकिन ईश्वर का स्वरूप क्या है, इसका तो पता ही नहीं चला। प्रश्नकर्ता के इस प्रश्न के उत्तर में सन्त जन कहते है कि ईश्वर वस्तु या स्थूल पदार्थ नहीं है, हाँ यह बात और है कि अतिशय श्रद्धावान व्यक्ति की जैसी श्रद्धा होती है, ईश्वर उसके लिए वैसा ही रूप धारण कर लेता है। परन्तु सन्तो के मतानुसार सार्वभौम सत्य यही है, कि ईश्वर की परिस्थिति विशेष एवं अनुभव का विषय है। जैसे सुगंध हमें दिखाई नहीं देती फिर भी अनुभव के आधार हम कहते हैं कि फूल में सुगन्ध है अर्थात् फूल को सुगन्ध प्राप्त है। इसी प्रकार हवा और तार में प्रवाहित विद्युत का कोई स्वरूप नहीं होता फिर भी अनुभव से ही हम कहते है कि हवा हमें प्राप्त हो रही है और तार को भी विद्युत मिल रही है।

श्रीगीता के उपरोक्त श्लोक में पुरूष की जिस स्थिति का वर्णन किया गया है, उस स्थिति को प्राप्त व्यक्ति की वृत्तियाँ पूर्ण रूप से अन्तर्मुखी हो चुकी होगी, वृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो चुका होगा और वह परम् शान्ति की स्थिति में ही होगा। अगर हम गहराई से चिन्तन करें तो श्री गीता के चौथे अध्याय के उन्तालीसवें श्लोक में "परमशान्ति" को ही ईश्वर का स्वरूप

बताया गया है। इसी प्रकार परमशान्ति की स्थिति में पहुँचे हुए व्यक्ति को कहाँ जाता है कि उसे ईश्वर की प्राप्ति हो गई है।

किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि शान्ति प्रदान करने का उपाय क्या है? श्री गीता के दूसरे अध्याय के इकहत्तर वें श्लोक में प्रश्नकर्ता का उत्तर निहित है। श्लोक इस प्रकार है–

"विहाय कामान् यः सर्वान पुमांश्चरति निः स्पृहः।।
निर्ममो निरहंकार स शान्तिमधिगच्छति।।"

अर्थात् सब प्रकार के श्रोतों की समस्त कामनाओं से सदा–सर्वदा के लिए अपने को दूर कर लेना देहाभिमान का नाम अहंकार है, उससे सर्वदा रहित हो जाना, शरीर एवं उसके सबंध रखने वाले सभी प्राणी–पदार्थों के प्रति ममता रहित हो जाना, सांसारिक वस्तुओं को और–अधिक पाना है, और अधिक पाना है ऐसी लालसा मन में बिल्कुल न रह जाना ही शान्ति प्रदान करने का उपाय है। अगर संक्षेप में कहाँ जाय तो जो पुरूष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर, ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ विचरता है वही शान्ति को प्रदान करता है। काला–न्तर में वहीं पुरूष परम शान्ति की स्थिति को भी प्राप्त करता है जिसे ईश्वर का स्वरूप कहाँ गया है।

श्री गीता के उपरोक्त श्लोकों पर बार–बार चिन्तन–मनन करने पर हमारे मन में ईश्वर के स्वरूप एवं ईश्वर की प्राप्ति के प्रति, जो कुछ भ्रान्तियाँ है, उन्हें दूर करने में अवश्य मदद मिलेगी।

अपने गुरूदेव भगवान के श्री चरणों के प्रति निम्नांकित भाव व्यक्त करते हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ। हे गुरूदेव!

"चरण छोड़ मैं कहीं न जाऊँ, उमर तेरे चरणों में बिताऊँ।
जीवन का हो विश्राम, गुरू जी तेरे चरणों में।।"

यौगिक तथा आयुर्वेदीय-संशोधन चिकित्सा

डा0 श्री नरेशकुमार ब्रह्मचारी, अध्यक्ष पातञ्जल योग समाज दिल्ली

प्रस्तुत लेख में प्रधानतः योग के नौलि बस्ति, निति, धौती, कपालभाति, त्राटक वज्रोली आदि शुद्धि कर्मो तथा आयुर्वेद के स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, नस्य, क्वल गण्डूषादि शुद्धि कर्मो पर तथा योग और आयुर्वे के आधारभूत सिद्धान्तों पर सविस्तार विचार करने का प्रयास किया गया है तथा इसके संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की गयी है। एवमेय यम, नियम प्राणयामादि विषयों का भी हल्का सा प्रकाश डाला गया है। अब इस अध्ययन का सारांशात्मक परिणाम प्रस्तुत करते हैं।

(1) दार्शनिकता का जहां तक सम्बन्ध है योग और आयुर्वेद दोनों ही सांख्यके ऋणी हैं तथा पुरुष एवं प्रकृति इन दोनों की मूल सत्ता में तथा प्रकृति के महत्व, अहंकार पाँच तन्मात्र, मन, पाँच ज्ञानन्द्रिय तथा पांच कर्मेन्द्रिय–इन तेईस उत्पत्तिमान द्रव्यों में, इस प्रकार पच्चीस तत्वों की सत्ता में विश्वास करते हैं।

(2) योग–दर्शन इन पच्चीस तत्वों के अतिरिक्त (पुरूष प्रकृति और 23 प्रकृतिजन्य विकारों से अतिरिक्त) एक छब्बीसवें तत्व में भी विश्वास रखता है। वह तत्व ईश्वर है जिसमें ज्ञान एवं निर्विकारता की पराकाष्ठा है। यद्यपि योगदर्शन एवं आयुर्वेद दोनों ही के अनुसार चित्त–वृत्तिसारूप्य को ही बन्धन तथा आत्मतत्व की स्वरूपावस्थिति को ही मोक्ष कहा गया है तथापि इतना भेद अवश्य है कि योगोक्त, ईश्वर तत्व पुरूषों से विशिष्ट है तथा क्लेश, कर्म, कर्मफल एवं कर्मफल–वासना से तीन काल में विनिर्मुक्त है। वही समस्त पुरूषों का गुरू, स्वयं सिद्ध, सर्वज्ञ एवं सर्वेश्वर्य सम्पन्न है, तथा उसके अनुकम्पाजन्य संकल्प–मात्र से जीव समस्त यौगिक ऐश्वर्य तथा असम्प्रज्ञात समाधि एवं मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। (व्या0भा0 1/23, 25, 26, 3/6) यद्यपि योग के समान ही आयुर्वेद ने भी पुरूषों की असंख्यता में विश्वास प्रगट किया है तथा आयुर्वेद पुरूष एवं योगोक्त पुरूष विशेष तत्व को प्रथक–प्रथक नहीं मानता है।

(3) दोनों में प्रकृति को त्रिगुणात्मक, रजसतमोरूपा जड़ तथा सर्वपुरूष सामान्य एवं एक ही स्वीकार किया है तथा पुरूष को विभु माना है।

(4) दोनों का लक्ष्य दुःखों की निवृत्ति करना है। इसके लिए दोनों ने ही दुःखों का मूल कारण अविद्या को ही ठहराया है योग की मान्यता के अनुसार जिस प्रकार कछुआ अपने अंगो को बाहर से अनदर सिकोड़ लेता है उसी प्रकार जो अपनी इन्द्रियों को बाहर से सिकोड लेता है उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है अथवा स्थितप्रज्ञ हो जाता है।1

देखिए आयुर्वेदानुसार भी आत्मा, इन्द्रिय, मन और विषय , इनके संयोग से सुख और दुःख प्रवृत्त होते हैं। परन्तु जब मन आत्मामें स्थिर हो जाता है तो किसी कार्य के न होने से सुख और दुःख निवृत्त होकर वशित्व की प्राप्ति होती है। योग के जानने वाले ऋषिजन इसी स्थिति को योग कहते हैं।2 इसी प्रकार योगोक्त अष्टविध वैभव तथा अन्य सिद्धियों की सत्ता को भी आयुर्वेद ने स्वीकार किया है (चरक शा0 1/136,140)

दुःख निवृत्ति प्रक्रिया को भी आयुर्वेद ने पूर्णतः मान्यता दी है। (देखिये चरक सूत्रस्थान प्रथमाध्याय)।

(5) योग के मत में दुखों का कारण अविद्या है (2/24/25)। चरक ने इस– अविद्या को उपधा कहकर पुकारा है और इसी को दुःख का कारण मना जाता है। (चरक0) सू0 1/64/65) उपधा, अविद्या, आसक्ति से ही धी, विभ्रंश, स्मृतिविभ्रंश, धृतिविभ्रंश रूप प्रज्ञापराध की उत्पत्ति होती है और प्रज्ञापराध से ही समस्त मानस दोषों को प्रवृति होती है (च0 शा0 1/98–107) तथा इन मानस दोषों से ही दोषों का प्रकोपन रूप रोगोद्भव होता है। (च0 शा0 1/109–114)

(6) चरक के अनुसार काम, क्रोध, लोभ

(1) यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
(गीता0 2/58)

(2) आत्मेनन्द्रियमनोर्थानां सन्निकर्षातप्रर्वतते।
सुखदुःखमनारम्भदात्मस्थे मनसि स्थिरे।।
निवर्तते तदभयं वशित्वं योपजायते।
सशरीरस्य योगज्ञस्तं योगमृषयोविदुः।।
(च0 शा0 1/137, 138)

मोह, ईर्ष्या, मान मद, शोक, चित्तोद्वेग, भय, हर्षादि माननस–विकार ही समस्त मानसिक रोगों के तथा बहुसंख्य कायिक रोगों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं तथा कामक्रोधादि की उत्पत्ति चित्त के रज एवं तम– इन दो प्रधान दोषों से होती है (च0वि06/6) अतः समस्त मानसिक एवं कायिक रोगों से छूट–कारा दिलाने का एक मात्र मार्ग चित्त के रजस् एवं तमस् की निवृत्ति करना है। यही आयुर्वेद का चरम लक्ष्य है। योग नाम चित्त वृत्तिनिरोध का है तथा यह चित्त वृत्तिनिरोध का है। रजस और तमस् आदि चैत्तिक दोषों की निवृत्ति से सिद्ध होता है। अन्तर मात्र इतना है कि रज, तम, रहित उस चित्त को योग समाधियुक्त (एकाग्र) कहता है तथा आयुर्वेद उस स्थिति को पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से देखता है।

(7) आयुर्वेद तथा योग दोनों ही शरीर की सात धातुओं, तीन दोषों तथा सात प्रकार के मलों में विश्वास रखते हैं तथा दोषवैषम्य रूप रोग की निवृति के लिए अपने अपने ढंग से उपचार देते हैं। योग उन दोषों की शान्त्यर्थ यमनियम, युक्ताहार विहार, प्राणायम–आसन तथा शुद्धि कर्मों का विधान करता है जब कि आयुर्वेद वेगानधारण, युक्ताहारविहार, औषधसेवन तथा पंचविध शुद्धि कर्मों का विधान करता है। योगोक्त यमनियमों में आयुर्वेदोक्त वेगनवधारण का पूर्णतः समावेश हो जाता है। आध्यात्मिक महत्व को छोड़कर भी।

(8) योगोक्त बस्ति, वज्रोलि, त्राटक, कपालभाति–जलनेति–सूत्रनेति, वारिसार–वातसार, गजकरणी, धोति ब्रह्मादातोन आदि शुद्धि कर्मों आयुर्वेदीय बस्ति, उत्तरबस्ति, आश्चोतन, नस्यशिरोबिरेचन, विरेचन, बमन, धूम्रपानादि कर्मों से पर्याप्ताधिक समता रखते हैं। अन्तर केवल ये है कि (1) योग में शुद्धि कर्म संशोध्य पुरूष के स्वयत्न साध्य होता है। तथा क्रिया प्रधान होता है, जबकि आयुर्वेद में शुद्धिकर्म चिकित्सक के यत्न द्वारा साध्य होता है तथा औषधि की प्रधानता रखता है। (2) यौगिक शुद्धिकर्मों के फलस्वरूप जहां शरीर के आन्तरिक संस्थानों की स्वच्छता होती है वहां शरीर के अन्त्र, क्लोम, नाड़ीसंस्थानादिकों व्यायाम मिलता है जिससे उनमें नई शक्ति आती है, अतः शिथिला का नष्ट होकर वे संस्थान क्रियाशक्ति सम्पन्न हो जाते हैं, आयुर्वेदीय शुद्धिकर्मों के करने से भी शरीर के आन्तरिक संस्थानों की स्वच्छता होती है तथा किंचित् अंश में नव–सक्रियता भी आती है परन्तु वह योगज नवशक्तिसंचार के सामने नगण्य है क्योंकि व्यायामज शक्ति की तुलना में औषधिजा शक्ति नहीं आ सकती । (3) यौगिक नौलि, गजकरणी आदिक्रियाओं से शरीर के आन्तरिक संस्थानों पर जो वशीकरण प्राप्त होता है वह आयुर्वेदीय शुद्धिकर्मों में प्रयुक्त विरेचक द्रव्यों से तीन काल में भी प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि अत्यधिक औषधि सेवन का अन्तिम परिणाम दुःखद ही होता है।

(9) यौगिक आसनों के बन्ध, मुद्राओं तथा नौलि बस्ति आदि शुद्धि कर्मों के सेवन से शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक अङ्ग दोनों को व्यायाम मिलता है। उस व्यायाम से शरीर की पुष्टि कान्ति, अङ्ग का पृथकत्व अग्नि का प्रदीप्ति, आलस्य का अभाव, स्थिरता, लघुता, शुद्धि और श्रम क्लाम प्यास गरमी और शीत आदि को सहने की शक्ति और उत्तम आरोग्य मिलता है (सु0 चि0 24/36,40) व्यायामज इन कायिक तथा मानसिक गुणों की जो संप्राप्ति होती है उसकी प्राप्ति आयुर्वेद से कदापि नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ योग में की जाने वाली धौति, गजकरणी, बस्ति, वज्रोलि क्रियायें नौलिपूर्वक होती है एतः उन क्रियाओं को करने से उदर–गम मेद दोष की अतिनिवृति एवमेव वहीं पर स्थित प्लीहा, क्लोम, आमाशय पक्वाशयादि की क्रियाशीलता भी सहज सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार इन्ही क्रियाओं के समान्तर आयु–र्वेद के वमन, विरेचन, बस्ति उत्तरबस्ति, आदि करने वाले व्यक्ति स्थूलोदर भी हो सकता है, उसके प्लीहा, क्लोम, आमाशय, पक्वाशयादि शिथिल भी हो जाते हैं जबकि यौगिक विधि से यह सब सवर्था असंभव है।

(10) इसके अतिरिक्त योग का स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, धारणा, ध्यान, समाधि तथा आसन, प्राणयाम प्रत्याहारादि से प्राप्त आध्यामित्क उत्कर्ष आयुर्वेद द्वारा प्राप्त होना असंभव है।

(11) आयुर्वेद अनेक स्थलों में योग का उपकारक भी है जैसे युक्ताहारविहार के निर्णय में, शुद्धिकर्म प्रक्रिया में, स्वंय क्रिया करने में असमर्थ व्याधित पुरूषों तथा अत्यन्त वृद्धों, अत्यन्त बाल्यावस्था बालों के संशोधनार्थ तथा साधक को क्रियाभ्यास देने के लिए उसकी प्रकृति के निर्णयार्थ, तथा औषधिजा सिद्धियों से सम्बन्धित साधनों के ज्ञानार्थ आयुर्वेद योग का उपकारक है।

(12) स्वच्छता में भी आयुर्वेद अन्नमय कोश, प्राणमय–कोश तथा किसी अंश तक मनोमय कोश तथा विज्ञानमय कोशकी संशुद्धि कर सकता है जबकि योग अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोश की संशुद्धि में पूर्णतया सक्षम है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि आयुर्वेद से शारीरिक, मानसिक रूप आध्यात्मिक दुःखों को निवृत्ति ही हो सकती है जबकि योग से आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविकादि त्रिविध दुखों की पूर्णतः निवृत्ति हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि यद्यपि आयुर्वेद योग का उपकारक भी है तथापि आयुर्वेदीय समस्त प्रक्रिया योग के प्राथमिक पादों में ही अन्तर्भूत हो जाती है। अतः योग का रोग–शामक क्षेत्र आयुर्वेद की अपेक्षा अधिक विस्तृत, उज्जवल तथा प्राकृतिक है।

देह और आत्मा इनका अन्योन्य विलक्षण

श्री पन्त महाराज, बालेकुन्द्रीकर

जिस प्रकार अंधेरे और उजाले का संबंध नहीं, उसी प्रकार आत्मा में और देह में संबंध नही है। यह शरीर जड़, आत्मा अजड़, इन दोनो में एकत्व कैसे संभव होगा? दोप अंधेरे का मेहमान बन सकेगा क्या? शरीर सविकारों आकार प्राप्त किया हुआ, आत्मा निर्विकारी निराकार। तनु, भिन्न, आत्मा अभिन्न अद्वय। शरीर नाशवान्, आत्मा अविनाशी इन कारण आत्मा का और इस शरीर का किसी भी काल में संबन्ध नही रह सकेगा। शरीर जड़ दृश्य, आत्मा अजड़ हंसस्वरूप। शरीर मिथ्या कहलाता है आत्मा सत्यामा कहलाता है। शरीर दुःख भरित, आत्मा नित्य सुख पूर्ण ऐसा होते हुये शरीर में और आत्मा में कैसे संबन्ध जुडेगा। आत्मा को शरीर का संग किसीकाल में भी किंचित् भी न रहने के कारण, निजरूप जानलिया गया कि शरीर के धर्मविकार ये किंचित भी आत्मा में नही। इसे प्रीति से समझलें। इस शरीर को यह अन्य देह, ऐसे निःसंशयरीति से देखने के लिये, अज्ञ मनुष्य ने कोटिजन्मपर्यन्त उग्र तपश्चर्या किया तो भी, वह देहाभिमानयुक्त रहने के कारण, निजाद्वयानन्द क्या उसे प्राप्त होगा? कभी भी नहीं।

आत्मत्व तनुधर्म निराकरण

हे गुण समुद्र बांधवा! परम सूक्ष्म रूपो आत्मा में शरीर के गुण बिल्कुल नहीं। यह सिद्धान्त अच्छी प्रकार जानले। देहादिको का द्रष्टा देहरूपी नहीं। देहादिकों के गुण निर्देही आत्मा में नहीं। परमात्मा प्रत्यगात्म नामक चिद्रूप होकर, सर्वसाक्षी निजद्रष्टा कहलाकर, यह दीखने वाला जड़ हक् कहलाने वाले, पूरे दृश्य पदार्थ, पृथक–पृथक जानता है, इसलिये वह दृश्य नहीं। वह इस दृश्य के जड़ धर्म को पृथक पन से देखकर, दूर रहने वाला चिद्रूप है। इसे जड़ धर्म छू नहीं सकते। देवदत्त पुरुष देह के धर्म यज्ञदत्त को जिस प्रकार बाधक नहीं, उसी प्रकार शरीर के धर्म आत्मा में नही। इसे निजात्म दृष्टि से सूक्ष्म विचार से देख। आत्मा शरीर नहीं, इन्द्रियगण नहीं, मन, बुद्धि आदि कारण नहीं, इन सबके पृथक साक्षीभूत, चेतन्यमात्र होने के कारण देहेन्द्रियादि के गुण धर्म आत्मा को नही, यह सिद्धान्त निजात्म ज्ञान से जानकर देखेगा तो नित्य सुखी तू ही हो जायेगा।

आत्मत्व में देहात्म भाव बाधा निरूपण

'यह दृश्य शरीर ही' यदि "मैं" कहकर भावना

करता है, तो सकल दृश्य विस्तार 'मैंहि' ऐसा तुझे कहना पड़ेगा। अर्थात् दीखने वाला जड़ दृश्याकार पूरा (सब) आत्मा, ऐसी भावना की तो, 'सर्व ही आत्मरूप' ऐसा होगा। इस लिये यह भ्रान्तिज्ञान आत्मत्व में नहीं। और इसीलिये ही 'देह ही आत्मः' यह भावना आत्मा को बिल्कुल भी नहीं। पंचभूतात्मक शरीर को जिसका अविभक्त संबन्ध है, ऐसे आकाश वायु, अग्नि, उदक, भूमि इन्हे आत्मत्व कल्पना करेगा तो नाम रूप से आया हुआ यह सर्वजन्म मै ही ऐसी भावना करनी पड़ेगी। अर्थात् आकाशादि पंचभूतों का कर्दम बनकर उत्पन्न हुआ देह ही मैं ऐसी भावना की तो, पंचभूतों के धर्म कहलाने वाले, तत्व समूह से दींखने वाला, जग भी मैं ही, यह भावना करनी पड़ेगी। तू प्रत्यगात्मस्वरूपो न होकर तेरे सामने दीखने वाला जड़ दृश्य शरीर मैं ही, यह भावना धरता है, तो तेरे मतानुसार जड़दृश्य और निजद्रष्टा एकरूप होते हैं। फिर तेरे सामने दीखनेवाले धट्पटादि दृश्य पदार्थ मैं ही ऐसी भावना करना अपरिहार्य हो जायेगा। हम नहीं ऐसे देह को आत्मत्व देगा तो श्वान–शूकार, गर्दभादि जन्तु मैं ही ऐसा क्यों नहीं कहता? ऐसा कहने में कोई प्रत्य–वाय है क्या? अन्नपानादि का परिपाक जो देह वह मैं ऐसी भावना रखता है तो उन्हीं अन्नपानादि होने वाले, नानाविधिरूपों के मल मूत्रादि अनह्य पदार्थ मैं ही, यह तुमसे कहते बन सकेगा क्या? शरीर की उत्पति के साथ ही मेरी उत्पत्ति होती है, ऐसा कहता है तो प्रतिदिन लाखों शरीर उत्पन्न होते हैं, उनके साथ तू जन्म–लेता है, ऐसा निर्भयरूप से कहते बनेगा क्या? उसी प्रकार शरीर का मरण अपनी अन्त्यावस्था ऐसे मानता है, रोज करोड़ो शरीर मरणाधीन हो रहे हैं, उन सबका मरण तुझे क्यों प्राप्त नहीं होगा? अर्थात् देह ही आत्मा ऐसी भ्रान्ति–भावना से, देह के सब धर्म आत्मा को हैं ऐसा स्वीकार करना पड़ता है। इसलिये आत्मा को देहभाव है ही नहीं–यह सिद्धान्त है।

—❋ गुरू उपदेश ❋—

योग से जीवन निखरता,
काल का चक्कर उतरता।
योग पथ–गामी बना जो,
पार भव सिंधु उतरता।।

कह रहे समझा, तुम्हें हम,
'दास' क्यों न तू सुधरता।
छोड़ विषयों का वखारा,
ब्रह्म में क्यों न बिचरता।।

जुगमन्दरदास सहारनपुर

योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल

एवं सोलह कलाएँ

श्री रामसजीवनसिंह

प्रायः लोग श्री राम एवं योगेश्वर कृष्ण की 12 तथा 16 कलाओं का अवतार मानते है। हम इस छोटे से लेख में 19 कलाओं का परिचय देते हुए उनकी उत्पत्ति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे। कुछ लोग जो चन्द्रमा की 16 कलाओं का उल्लेख करते है। किन्तु चन्द्रमा या सूर्य की कलाओं से श्रीराम या श्रीकृष्ण का कोई सम्बन्ध नहीं है।

सर्वप्रथम हमें यह देखना चाहिए 16 कलाएँ क्या है? प्रश्नोपनिषद् में इन कलाआकं का वर्णन इस प्रकार है:–

सप्रमाणसृजत प्राणाच्छ्राद्धा रवं वायुर्ज्योतिरायः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्न–मन्नाद्वीर्य तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च।

अर्थः–उसने प्राण को उत्पन्न किया। प्राण से श्रद्धा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन्द्रिय मन् अन्न उत्पन्न किए। अन्न से वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और लोको में नाम उत्पन्न किया।

✲ चिन्ता ✲

चिन्ता करने से ही कोई काम सध नहीं सकता।

चिन्ता इच्छाओं के द्वारा उत्तेजित ज्वराक्रांत कल्पना का परिणाम है। चिंता करना अधिकाशतः अपनी स्वयं की उत्पन्न की गई यन्त्रणा को भागना हैं चिंता ने कभी किसी ने कुछ भी कल्याण नहीं किया है। चिंता से केवल अन्तःकरण की शक्तियों का अपव्यय ही नहीं होता किन्तु जीवन का आनन्द तथा सम्पूर्णता भी कम हो जाती है।

जिन अनेक गुणों को विकसित करना साधक के लिए आवश्यक होता है, उनमें प्रसन्नता, उत्साह, तथा मानसिक समता या स्थिरत्ता अत्यन्त मुख्य है। चिन्ता को काटकर जीवन से निकाल बाहर किये बिना इन गुणों का विकसित होना असम्भव है। जब मन उदास विषण्ण, उद्विग्नि रहता है, तो कार्य अस्तव्यस्त तथा बंधन कारक होते हैं। इसीलिए सभी परिस्थितियों में प्रसन्न, उत्साहित तथा स्थिर चित्त रहने की परम आवश्यकता है चिन्ताग्रस्त रहने की नहीं।

श्रुतिसार

व्याख्या–उक्त वाक्य में 16 कलाओं का विवरण इस प्रकार दिया हुआ है:–

1. प्राण (सं0 8 व 9) में सम्मिलित)

2. श्रद्धा–जिससे मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

(3) आकाश
(4) वायु
(5) ज्योति–अग्नि
(6) जल
(7) पृथिवी
} पंच–स्थूल भूत जिससे स्थूल शरीर बना करता है।

(8) इन्द्रिय
(9) मन
} सं. 1 (प्राण) मन और इन्द्रिय तथा उनके विषयों (रूप रस, गन्ध, शब्द स्पर्श) से सूक्ष्म शरीर बना करता है।

(10) अन्न–मनुष्य के जीवन का हेतु

(11) वीर्य–शक्ति

(12) तप–(द्वन्द सहनं तप:) सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि के जोड़े को सहन करना।

(13) मन्त्र–वेदरूपी ईश्वरीय ज्ञान

(14) कर्म–सकाम और निष्काम कर्म

(15) लोक–समस्त नक्षत्र और मनुष्यादि

(16) नाम–जगत्स्थ चराचर वस्तुओं की प्रसिद्धि का कारण उपयुक्त 16 कलाओं के विवरण से स्पष्ट है कि उनमें आत्मा (परमात्मा और जीवात्मा) को छोड़कर अन्य सभी बातें सम्मिलित हैं।

अब प्रश्न है 16 कलाओं को कौन उत्पन्न करता है? इसके पहले मैं श्री सिद्ध गुफा संवाई की एक छोटी सी घटना का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूं। जब इस गुफा में योगयोगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी निवास करते थे उस समय एक रात्रि के चौथे पहर सवांई ग्राम के कुछ निवासियों ने प्रभु दर्शनार्थ गुफा के अन्दर प्रवेश किया। उन्होने महाप्रभु रामलाल जी को शिव रूप में देखा। उनकी जटाऐं बिखरा हुई थी। सारे शरीर में भस्म लगी हुई थी। मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित था। त्रिपुण्ड लगा था। कानों में गोजर के कुण्डल लटक रहे थे। शरीर में यज्ञोपवीत की तरह एक सांप लिपटा हुआ था। गले में, भुजाओं में जटाओं में भी सर्पउत्कार कर रहे थे। यत्र, तत्र गुफा के अन्दर तथा दरवाजे पर भी अनेक सर्प घूम रहे थे।

ग्रामवासी उन सर्पों को देखकर डर गये और पीछे लौटने लगे। योगयोगेश्वर ने आवाज लगाई, "आओ! डरो मत! ये भी तुम्हारे भाई हैं। अब इतनी रात्रि को गुफा में मत आना।" महाप्रभु के वचनों को सुनकर सब निडर होकर उनके असली रूप का दर्शन कर गुफा से बाहर आए।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में इन्ही महान् शक्ति का भली भांति परिचय कराया गया है

यो देवानां प्रभवचोद्भवश्च

विश्चाधियों रूद्रो महर्षिः।

हिरएयगर्भ जनयामास पूर्व

स न बुद्धयों शुभया संबुनक्त

(अध्याय 3 मंत्र 4)

अर्थः—जो रूद्र, इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति का हेतु और वृद्धि का हेतु है, तथा जो सबका अधिपत्ति और महान् ज्ञानी (सर्वज्ञ) है, जिसने पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

यजुर्वेद में भी कहा गया है:—

या ते रूद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी

तया नस्तनुषा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि

(अध्याय 16 मंत्र 2)

अर्थः—हे रूद्रदेव! तेरी जो भयानकता से शून्य पुण्य से प्रकाशित होने वाली तथा कल्याणमयी, मूर्ति है, हे पर्वत पर रहकर सुख का विस्तार करने वाले शिव! उस परम शान्त मूर्ति से तू कृपा करके हम लागों को देख।

यजुर्वेद का अगला मंत्र है:—

यामिषु गिरिशन्त हस्ते विमर्ष्यस्तवे।

शिवा गिरित्र तां कुरूमा हिऊँसीः पुरुष जगत्।।

(अध्याय 16 मंत्र 3)

अर्थः—हे गिरिशन्त! जिस वाण को फेकने के लिए तू हाथ में धारण किए हुए है, हे गिरिराज हिमालय की रक्षा करने वाले देव! उस वाण को कल्याणमय बना ले। जीव समुदाय रूप जगत् को नष्ट न कर।

उक्त दोनों मंत्र श्वेताश्वतरोपनिषद् के अध्याय 3 में भी आये हैं। इन मंत्रों से यह सिद्ध हो जाता है कि सर्वशक्तिमान शिव हिमालय पर्वत में निवास करते हैं। आगे श्वेश्ताश्वतरोपनिषद् में इन्ही के विषय में मंत्र आता है:—

वेदाहमेतं पुरूष महान्त

मादित्यवर्ण तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाथ।।

(अध्याय 3 मंत्र 8)

व्याख्याः—कोई योगरत साधक अपने इन महान् से भी महान् परम पुरुषोंतम को मैं जानता हू। वे अविद्यारूप अन्धकार से सर्वथा अतीत हैं तथा सूर्य की भांति स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में—इस जन्म मृत्यु के बन्धन से सदा के लिए छुटकारा पाने में समर्थ होता है। परमपद की प्राप्ति के लिए

इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग अर्थात्! उपाय नहीं है। (यह यजुर्वेद अध्याय 31 का अठारहवां मंत्र भी है।

सन् 1930 की घटना है। किसी के द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्त प्रयाग के झूसी निवासी मेढ़ू मल्लाह ने अपनी दिव्यदृष्टि से माघ मेले में आये हुए समस्त महात्माओं की शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके चारों तरफ फैले प्रकाश को देखना प्रारम्भ किया। जब मेरे प्रभु योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी के प्रकाश को देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। विश्व में फैले हुए तेज में प्रभु का दर्शन कर मन में प्रार्थना की वे दूसरे दिन उसकी नाव में सैर करें और पारिश्रामिक न दे तभी वह अपने धन्य को समझेगा। मेरे प्रभु ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और दूसरे दिन इच्छा पूरी की। इस प्रकार वह मल्लाह जन्म-मरण के चक्कर से छूटकर मोक्ष का अधिकारी बना।

इससे सिद्ध होता है कि मेरे प्रभु सूर्य की भांति स्वयं प्रकाशस्वरूप है जैसा कि उक्त मन्त्र में कहा गया है।

ऋग्वेद में दसवें मण्डल के 114 सूत्र में भी कहा गया है।

मा नस्तो के तनये मा न आयुर्षि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रूद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे।।

(यह यजुर्वेद अध्याय 16 का सोलहवां मंत्र तथा श्वेताश्वतरोपनिषाद् का अध्याय 4 का बाईसवां मंत्र भी है।)

व्याख्याः- हे सबका संहार करने वाले रूद्रदेव! हम लोग नाना प्रकार की भेंट समर्पण करते हुए सदा ही आपको बुलाते रहते है। आप ही हमारी रक्षा करने में सर्वथा समर्थ हैं, अतः हम आपसे प्रार्थना करते है कि आप हम पर कभी कुपित न हों तथा कुपित होकर हमारे पुत्र और पौत्रों को, हमारी आयु को-जीवन को तथा हमारे गौ, घोड़े आदि पशुओं को कभी किसी प्रकार की क्षति न पहुँचायें। हमारे जो वीर-साहसी पुरूष हैं, उनका भी नाश न करें, अर्थात् सब प्रकार से हमारी और हमारे धन-जन की रक्षा करें।

आज भी कुछ लोग संवाई गांव में है जिन्होने आपत्ति काल में योगयोगेश्वर महा-प्रभु रामलाल के पास गए और उनकी रक्षा हुई। समय-समय पर अब भी अपने भक्तों को दर्शन देते रहते हैं और उनके कष्टों को दूर करते हैं। ऐसी घटनाएँ अकसर होती रहती है।

पूरे श्वेताश्वतरोपनिषद् में जगत् को उत्पन्न करने वाले तथा संघार करने वाले इन्ही शिवरूप महाप्रभु से सम्बन्धित मन्त्र है। अध्याय 5 के चौदहें मन्त्र में इन्हे 16

कलाओं को उत्पन्न करने वाला कहा गया है। यथा:-

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।।

अर्थ:-श्रद्धा और भक्ति के भाव से प्राप्त होने वाले योग्य, आश्रायरहित कहे जाने वाले जगत् की उत्पत्ति संहार करने वोल कल्याण-स्वरूप तथा (प्रश्नोपनिषद् 6।6।4 में बतायी हुई) सोलह कलाओं की रचना करने वाले परमदेव परमेश्वर को जो साधक जान लेते हैं, वे शरीर को सदा के लिए त्याग देते हैं। अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट जाते हैं।

इस प्रकार उक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि 16 कलाओं को उत्पन्न करने वाले शिवावतार हिमालय निवासी मेरे महा-प्रभु योगयोगेश्वर रामलाल जी हैं। वे ही अपने भक्तों को बारह, सोलह आदि कलाओं से सुसज्जित करते रहते हैं। उनकी महान् शक्ति को इस संसार में भला कौन परख सकता है?

❊ तेरा मन्दिर ❊

श्री 'दिव्य'

बहुत दूर से चलकर आया,
लेकिन मन्दिर मिला न तेरा!
जहां निहारा वहां न पाया,
जाने तेरा कहां बसेरा!!

कैसा तेरा रूप रङ्ग है,
यह भी कोई बता न पाया!
पुरुष-सूक्त के पाठ पढे पर,
कुछ भी नहीं समझ में आया!!

पूछा तो कह दिया किसी ने
वह छलिया है नहीं मिलेगा।
लेकिन कोई यह भी बोला,
वह रहता है, यहीं मिलेगा।।

साधु और सन्तों से पूछा,
योग-साधना भी कर डाली,
लेकिन मुझे न मिल पायी है,
वीथी तेरे मन्दिर वाली।।

कब से चला, कहां से आया,
क्या तुमको यह ज्ञात नहीं है!
मेरी-अपनी कठिनाई की-
क्या कोई कुछ बात नहीं है!!

☼ स्वाध्याय में सहायक सिद्ध योग ☼

व्यवस्थापक सिद्धयोग

अपने आश्रम से पिछले 57 वर्षों ये सिद्धयोग मासिक पत्रिका निकल रही है। श्री गुरुदेव के समय में इसे बहुत एवं आदर से पढ़ा जाता था। कारण यह था कि स्वाध्याय का यह एक मात्र साधन था योग सिद्धान्तों को बारीकी से समझाया जाता था। कई साधक इसे पढ़कर गुरुकृपा को प्राप्त कर दिव्य अनुभूतियों वाले बन गये थे। इसी माध्यम से जुड़कर योग विद्या के महत्त्व को समझने लगते थे। आज समय बदल गया है। मनुष्य आध्यात्म से दूर होता जा रहा है। सांसारिक में अधिक फसता जा रहा है। हमारे कई आश्रम स्थापित हो चुके है। वहां के आचार्य भी इस ओर ध्यान नहीं दे रहे है। इसके ग्राहक कम होते जा रहे हैं। एक कारण यह है कि पाठक लेख लम्बे पढ़ना नहीं चाहता है कुछ ज्ञान उसे Whatsapp या ग्रुप के माध्यम से मिल जाता है। जो शार्ट रूप में होता है। ज्ञान प्रसार का यह उत्तम साधन बन चुका है। दूसरी बात यह भी है कि डाक से पत्रिका पहुचनें की शिकायत ज्यादा आ रही है। पोस्टमैन पत्रिका बॉटता ही नहीं है। लापरवाही बहुत ज्यादा हो रही है। यद्यपि सिद्धयोग कार्यालय से सावधानी से ही भेजे जाते है। कुछ साधक मण्डल सराहनीय कार्य कर रहे हैं। इनमें कानपुर मण्डल, गंगापुर मण्डल, दतिया मण्डल जैसे–कुछ मण्डल है जो इस कार्य को बड़े परिश्रम से करते हैं। ये लोग धन्यवाद के पात्र हैं मेरा कहना है कि जो गुरुधाम से जुडे है उन्हे पत्रिका का ग्राहक बनकर अवश्य पढ़नी चाहिए ताकि स्वाध्याय बन सके, गुरुदेव से जुडे रहने का माध्यम बना रहे। आशा करता हू साधक अवश्य ध्यान देंगे औरो को भी प्रेरणा देकर उन्हें लाभ पहुचायेंगे। जय प्रभु जी की!

सम्पादक–सिद्धयोग

❊योग सिद्धाश्रम मण्डी (हि०प्र०) में विशाल योग शिविर❊

प्राचार्य–अनिल दूबे– व्यास नदी के तट पर स्थित छोटी काशी के नाम से विख्यात मण्डी (हि0प्र0) में योग सिद्ध आश्रम में प्रति वर्ष की भाँति आनन्दकंद प्रभुजी रामलाल जी महाराज एवं सद्गुरूदेव योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की असीम अनुकम्पा से योगी डॉ0 दासलाल जी महाराज के परम सानिध्य में 10,11,12, 13 जून 2024 को दिव्य योग शिविर का आयोजन किया गया।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रतिदिन प्रातः मंगला आरती, ध्यान, जीवन तत्व क्रियाये, योगासन, प्राणायाम गीता पाठ एवं गीता जी पर सार प्रवचन सांय भजन, संकीर्तन योग पर व्याख्यान एवं अन्त में प्रभुजी की दिव्य आरती आश्रम वातावरण शांत कल कल करती व्यास नदीं की ध्वनि से प्रातः 5:30 से 7:30 तक ध्याननाभ्यास करने मन स्वतः ही ध्यान की ओर प्रवृत हो जाता 7:30 से 9 बजे तक महाराज जी जीवन तत्व, क्रियायें, योगासन, प्राणायाम्, सूर्य नमस्कार आदि स्वयं कराते एवं समस्त क्रियाओं की विधि उपयोगिता महत्व को समझाते हुए अभ्यास करवाते।

प्रातः 10 बजे से 12 बजे तक का समय गीता पात एवं सार प्रवचन का रहता आचार्य जी गीता पाठ करते सभी समी साधकों से भी करवाते साथ–साथ गीता के सार एवं प्रवचन सरल शब्दों में व्याख्या करके समझाते गीता के 5 वें 6,7,8, अध्याओं की व्याख्या करके विस्तार पूर्वक समझाया।

कार्यक्रम में विभिन्न प्रान्तों उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश महाराष्ट्र, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, जम्मू आदि स्थानों से गुरू भक्तों ने कार्यक्रम में उपस्थित होकर संत्संग का पुण्य लाभ प्राप्त किया।

कई श्रद्धालुओं के मन में योग से संबधित प्रश्न उठ रहे थे मीडिया कर्मियों के समक्ष शहर के गणमान्य नागरिकों ने प्रश्न किये महाराज जी ने उनके प्रश्नों के उत्तर देकर मन में उठ रहे संसयों को योग के माध्यम से समझाया।

आश्रम में निःशुल्क आयुर्वेदिक पद्धति द्वारा इलाज होता है प्रतिदिन प्रातः 10 बजे से सांय 5 बजे तक डाक्टर आश्रम में उपस्थित रहते हैं बाहर से आये कुछ गुरू भक्तों ने इलाज करवाया एवं लाभ भी हुआ।

आचार्य जी गीता के प्रत्येक श्लोंकों का गूढ़ अर्थ सरल शब्दों में समझाते हैं 5 वें अध्याय में कर्म करते हुए भी उसमें आसक्ति नहीं रहना चाहिए, जो द्वन्दों से मुक्त है। जिसकी बुद्धि स्थिर है, जो प्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होता और अप्रिय के प्राप्त होने पर वह दुःखी नहीं होता, जिसकी बुद्धि हमेशा स्थिर रहती है वही सही अर्थो में ऐसा योगी कहाँ जायेगा। जिसने कर्मों का सन्यास योग प्राप्त कर लिया है।

इसी प्रकार छठे अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से अपनी शंका का समाधान चाहता है कि जो योग पथ से किसी कारण वश हट जाता है उसकी मरने के बाद क्या स्थिति होती है। इस पर भगवान ने उसे समझाया कि योग पथ पर चला हुआ कदम कभी व्यर्थ नहीं जाता पूर्णता को प्राप्त न होने पर भी उसका अगला जन्म अच्छे कुल और समृद्ध परिवार में होता है। जहाँ से पुनः साधन करने पर उसे अपनी मंजिल मिल जाती है।

सातवें और आठवें अध्याय में आचार्य जी ने समझाया कि योग प्राप्ति के मार्ग में ईश्वर की माया आवरण डाल देती है। इसे जानकर भगवत् भक्ति के द्वारा जो इसे हटाने का प्रत्यन करता है, उसे भगवान ही कृतकृत्य कर देते है। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म योग के बारे में उन्होने बताया कि अन्तिम समय में जो साधक भक्ति और योग के बल से भ्रूमध्य प्राण में स्थापित करते हुये मुझ में ध्यान लगाता है वह मृत्यु के पश्चात् मुझे ही प्राप्त होता है। इसमें कुछ भी संसय नहीं है।

आचार्य जी ने आष्टांग योग, चित्त की वृतियाँ अन्य अनेको गूढ़ रहस्यों को गीता, वेद, योग दर्शन, उपनिषदों के माध्यम से सरल शब्दों में समझाया और प्रमुखता से यही संदेश सभी को दिया कम से कम 2 घण्टे जप, 1 घण्टे ध्यान अवश्य ही करें। इसी में सभी की भलाई है। सभी का कल्याण है। दिल्ली से आये प्रो0 M.K. त्रिखा संबोधन अच्छा रहा।

13 जून को विशाल भण्डारा हुआ सभी ने प्रभुजी का प्रसाद ग्रहण किया और अपने अपने गंतव्य को प्रस्थान किया।

।।जय गुरूदेव।।

योग साधन आश्रम ऋषीकेश का वार्षिक उत्सव ❋

❋ प्रभात फेरी ❋

(आश्रम समाचार ऋषिकेश)

देव भूमि ऋषीकेश में अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड–नायक आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं सदगुरूदेव योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की असीम अनुकम्पा से प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी योग साधन आश्रम ऋषिकेश में गंगा दशहरा के पर्व पर प्रभातफेरी दिनांक 14, 15, 16 जून को बडे ही धूमधाम से उत्सव मनाया गया 14 जून को प्रातः प्रभुजी, गुरूजी की शोभायात्रा शहर के मुख्य मार्गों से निकाली गयी। शोभायात्रा में एक ही ध्वनि गूंज रही थी उठो सोने वालो जगाने वाले आ गये योग का डंका बजाने वाले आ गये। देश के कोने कोने से हजारों की संख्या में भक्तगण पहुँचे दिल्ली आश्रम से श्री देवेन्द्र शर्मा, आगरा से श्री संजय सिद्ध गुफा से श्री मुन्ना ब्रह्मचारी, बाला बहिन जी आदि।

दिनांक 15 जून को श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम के आचार्यडॉ0 दासलाल जी महाराज योग साधन आश्रम ऋषीकेश पहुँचे प्रभुजी की दिव्य आरती उपरांत व्याख्यान हुये डॉ0 दासलाल जी महाराज ने अपने व्याख्यान में बतलाया मेरी शिक्षा, दीक्षा ऋषीकेश में ही हुयी गुरूदेव के आदेश पर मैं 12 वर्ष ऋषीकेश आश्रम में रहा मेरे साथ वीरेन्द्र ब्रह्मचारी, सूरज, प्रकाश रहा करते थें। दोनों समय भोजन बनाना फिर कैलाश आश्रम में संस्कृत पढ़ने जाना शास्त्रों ग्र –थों का अध्ययन करना आश्रम में पूर्ण अनुशासन में रह कर समय का सद्पयोग मेरे द्वारा किया गया।

आचार्य जी ने श्री प्रभुजी, सदगुरूदेव के जीवन चरित्र पर भी प्रकाश डाला प्रभुजी 1928 से 1938 तक ऋषीकेश रहे प्रभुजी के शिष्य मुलखराज जी गोपालनन्द जी नरसिंह मूर्ती जी चन्द्रमोहन जी दो देवियाँ माता द्रोपदी ऋषी देवी रहें जिसमें चन्द्रमोहन जी महाराज ने सबसे ज्यादा योग का प्रचार किया।

गोपालानन्द जी का शरीर प्रभुजी के रहते छूट गया था। आदि चरित्रों पर विस्तार से वर्णन करके बतलाया।

डॉ0 दासलाल जी महाराज ने आपने व्याख्यान में योग सबसे मुख्य बात हैं श्रद्धा बहुत से लोग शिष्य तो बन जाते हैं परन्तु श्रद्धा नहीं होती हैं कहते कि गुरूदेव के शिष्य है किन्तु श्रद्धा नहीं होती है।

महाराज जी ने श्रद्धा पर प्रकाश डालते हुए बतलाया श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः चित्त की प्रसन्नता ही श्रद्धा है योगी की माता की तरह रक्षा करती है। जहाँ क्यों और कैसे का प्रश्न ही न मन में उठे वास्तविक श्रद्धा वह हैं। जिसमें गुरूदेव के प्रति मंत्र के प्रति, ईश्वर के प्रति, साधना के प्रति श्रद्धा होती हैं, वहाँ मन प्रफुल्लित होता है।

"श्रद्धावान लभते ज्ञान"–श्रद्धावान व्यक्ति को ही ज्ञान प्राप्त होता है संशय युक्त साधक ही परामर्थ से भ्रष्ट हो जाते है संशय युक्त साधक को लोक और परलोक दोनो में ही सुख नहीं मिलता है।

रामचरित मानस में 'भवानी शंकरौ वन्दे: श्रद्धा विश्वास रूपिणौ' श्रद्धा और विश्वास की वन्दना भवानी और शंकर के रूप में भी की गयी हैं। तुलसीदास जी ने भवानी और शंकर इन दोनो शक्तियों को मानव के अन्तःकरण में श्रद्धा और विश्वास के रूप में स्थित माना है श्रद्धा और विश्वास के अभाव में अध्यात्म की कोई भी सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती गोस्वामी जी ने श्रद्धा को ही धर्म का मूल आधार माना है।

इस प्रकार डॉ दासलाल जी महाराज ने अपने व्याख्यान में श्रद्धा एवं विश्वास पर विस्तार पूर्वक सरल शब्दों में व्याख्यान दिया।

दिल्ली आश्रम से श्री देवेन्द्र शर्मा जी ने अपने व्याख्यान में प्रभु जी के जीवन चरित्र के बारे में बतलाया कि प्रभुजी किन–किन स्थानों से होते हुये नेपाल हिमालय धाम पहुँचे। जहाँ डेढ़ वर्ष बादः पुःन इस पृथ्वी मंडल पर काया निर्माण करके प्रभुजी ने 16 शरीर बना करके विप्रवेश में पुनः आये और लोगो के कष्ट दूर किये।

श्री संजय जी ने प्रभुजी, गुरूजी के दृष्टांतों करे बतलाया एवं गुरूदेव की अद्भुत लीलाओं का वर्णन किया।

आश्रम में रहने भोजन आदि की उत्तम व्यवस्था ट्रस्ट द्वारा की गयी थी गंगा दशहरा साधु संतो को ब्रह्मभोज गुरूभक्तों ने भण्डारे में दिव्य प्रसाद ग्रहण करके अपने अपने गंतव्य के लिए रवाना हुये।

।।जय गुरूदेव।।

काली दाढ़ी वाले और सफेद धोती कुर्ते वाले

जगदीशराय वंशल "अद्यम"

जाको राखे सांइयाँ–मार सके ना कोए।
बाल न बाँका करि सके–जो जग बैरी होए।।

काल–चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले अखिल ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं हृदय सम्राट योग योगेश्वर सदगुरू देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने लाड़ले बच्चों पर हर जगह, हर समय, कोई भी संकट आने पर जनकल्याणार्थ यूं चुटकी में समाधान करते रहे हैं। भले ही उस विपत्ति के समय कोई भाई–बहिन श्री गुरूदेव भगवान को यादकर पावे अथवा चूक भी जाय। ये कृपाऐं चाहे प्रचण्ड अग्निकाण्ड की लपटों से निकालने की हों अथवा तीव्र जल धारा में डूबने से बचाने की हों अथवा सरपट दौड़ती रेलगाड़ी के चक्के से बचाने की हों अथवा किसी अनिष्ट कारी तान्त्रिक के प्रकोप से छुड़ाने की हों अथवा मृत्यु से जूझ रहे रहे बीमार की हों अथवा किन्ही उग्रवादियों इत्यादि से प्राण रक्षा करने की हों....। लेकिन वृद्धि–सिद्धि के स्वामी कल्याण घनश्री गुरूदेव जी महाराज को इस प्रकार के मर्म को जानना श्रेष्ठतम ध्यानाभाषियों के भी बूते से बाहर की बात है कि सिद्ध शिरोमणि गुरूदेव भगवान किस प्रकार किसी को श्री सिद्ध गुफा की रज देकर, किसी को शक्ति संचारित पुष्प पंखुड़ियाँ देकर, किसी को अपनी कृपानुकम्पा से स्पृष्य करके किसी को दृश्य मात्र से और किसी किसी को अपने मानसिक संल्कप से किस प्रकार निहाल करते रहे हैं।

इसी प्रकार का एक विलक्षण प्रसंग श्री सिद्धयोग संवाई धाम से सम्बन्धित, गुरू भक्ति से ओत प्रोत, यू0पी0 राज्य के अन्तर्गत जहाँनाबाद के स्थाई निवासी 54 वर्षीय हमारे आदरणीय गुरू भाई श्री अशोक कुमार पाण्डे का है जो दादा गुरू अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय गुरूदेव भगवान आनन्द विभूषित योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की चरण–शरण में पूर्ण रूपेण समर्पित हैं। स्वयं संवाई आश्रम पधारे मृदुभाषी पाण्डे भाई जी ने इस प्रकार परिलक्षित किया कि मुझे सन् 2004 में जहाँनाबाद के योग प्रचार कार्यक्रम से प्रभावित होकर माताजी से योगशिक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आजकल मैं अपने स्थानीय सिविल कोर्ट में स्टैनो के पद पर कार्यरत हूँ। गुरूकृपाओं के विषय में मेरा तो यही कहना है कि हरी अनन्त–हरी कथा अन्नता के अनुसार गुरू कृपाओं का कोई अन्त नहीं है। और उन कृपाओं को लेखनी के शब्दों में पिरोना पूर्ण तथ असम्भव है। फिर भी श्री गुरूदेव भगवान के श्री चरणों में नमन करते–मुझे एक घटना की याद ताजा हो रही है कि–

यह घटना सन् 2005 की है। एक दिन बहुत सारे उग्रवादीयों ने अचानक हमारे जहाँनाबाद की जेल पर घातक आक्रमण कर दिया। जेल, न्यायालय और अधिकारीयों एवं कर्मचारियों के आवास एक ही परिसर में आस–पास में स्थित हैं। उग्रवादीयों ने अन्धा–धुन्ध गोलियाँ बरसा कर इतनी दहसत फैला दी कि जो जहाँ था, वहीं ठहर गया। अपनी जान बचाने को भगवान से प्रार्थना के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझ रहा था। हे भगवान रक्षा करो, हमें प्राण–दान दो, आप दयालु कृपालु हो। यह क्या हो रहा है?.........इसी उहा–पोह में हमारा एक चहेता गार्ड रामसिंह भी घटनास्थल पर फंस गया। रामसिंह दीक्षित तो नहीं है परन्तु गुरुजी प्रति अत्यन्त निष्ठावान है। वह गुरूपूजा के लिए दैनिक पुष्प लाने से कभी नहीं चूकता।

संकट की इस घड़ी मे न्यायधीशों ने, कर्मचारीयों ने और समस्त परिवारों ने स्वंय को ईश्वर के भरोसे जान कर पुकारा हे भगवान दया करें आपके सिवा इस अन्तिम समय हमारा कोई नहीं है। हमारे जान–माल की रक्षा करें.........। तभी मुझे याद आया कि सत्संग में बताया गया था कि कभी किसी पर कोई संकट आन पड़े तो काली दाढ़ी वाले और सफेद धोती कुर्ते वाले को याद कर लेना–फरीयाद कर लेना तुरन्त रक्षा होगी.........। बस फिर क्या था हमने तो यही रट लगा दी कि हे काली दाढ़ी वाले–हे सफेद धोती कुर्ते वाले गुरूदेव, हे करूणा निधान–दया सागर–हे योगेश्वर हमारी रक्षा करें। हमारे गार्ड रामसिंह के प्राण बचा दें। हे आशुतोष–हे जीवनदाता त्राही माम–त्राही माम । हे काली दाढ़ी वाले प्रभुजी, हे सफेद धोती कुर्ते वाले गुरूजी आप तो योगेश्वर हो, सर्वव्यापक हो, आपको तो सब पता होगा, हम मरने जा रहे हैं। दया करो नाथ, दया करो..........।

सुनकर, आते पुकार–गुरू जी आते हैं।
करते हैं शक्ति संचार–प्राण बचाते हैं।।

आ गई लहर शिवा के मन में– हमारे मनुहार करते करते, वह क्षण आया, जब गोलियों की ध्यांय ध्यांय शांत हुई। हमने कुछ राहत की साँस ली। यह सब तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करने वाले निर्गुण, सर्वव्यापी, अनन्त श्री प्रभुजी एवं गुरूजी का चमत्कार हुआ कि हमको जान–माल की कोई हानि नहीं हुई। हमारा चहेतागार्ड राम सिंह भी काली दाढ़ी वाले एवं सफेद धोती–कुर्ता वाले गुरूदेव भगवान ने सुरक्षित कवच से बाल बाल बचा लिया और हम सब को इस अवसाद से उभार कर पुल्कित एवं आनन्दित किया। हम पुकार उठे–गुरूदेव शरणम–गुरुदेव नमामी......। इसी माध्य पता लगा कि इस वारदात में एक कैदी और दो पुलिस कर्मी मारे गए तथा उग्रवादी जेल तोड़कर अपने एक साथी अजय नामक कैदी को अपने साथ भगा कर ले गए। मीडिया इस घटना को "जहाँनाबाद जेलकाण्ड"के नाम से प्रकाशित करता रहा है। किसी सूझवाले ने सच ही कहा है कि:–

ये तन विष की बेलरी–गुरू अमृत की खान।
शीश दिए ऐसे गुरू मिलें–तो भी सस्ता जान।।

क्योंकि अन्तर्यामी गुरूदेव भगवान केवल इस लोक के ही नहीं, परलोकों के भी एकमात्र स्वतन्त्र ईश्वर श्री गुरूदेव ही हैं। फिर कौन ऐसा अभागा होगा जो कामधेनु की शरण छोड़कर गदीही की सेवा करें?

भाई साहिब! यह कोई प्रथम अनहोनी नहीं है। जहाँनाबाद के आस–पास का पूरा क्षेत्र उग्र–वादीयों की आँखों का रोड़ा बना रहता है। एक बार तो एक गाँव में उग्रवादी गिरोह ने 150–200 निअपराध ग्रामिणों को अपनी गोलियों से भून डाला था। आज तक किसी अपराधी का बाल तक बाँका नहीं हुआ। कहना पड़ेगा कि 'गहना कर्मणों गति'। अर्थात– नौ दिन चले अढ़ाई कोस।

हमारे जेलकाण्ड के पश्चात, संस्कारों का ऐसा वेग चला कि अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज काली दाढ़ी वाले एवं जगत स्र्वाधार, कल्प वृक्ष गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सफेद धोती कुर्ता वाले के प्रति चढ़ती खुमारी से हमारे आदरणीय न्यायधीश श्री त्रिपाठी जी A.P.J. और मान्यवर न्यायधीश श्री पाण्डे जी ने दीक्षा ग्रहण कर स्वंय को कृतार्थ किया। ये महोदय दीक्षा उपरान्त प्रमोट हो कर डिस्टीकट जज के पद पर आसीन है। गार्ड राम सिंह भी गुरूकृपा से प्रमोट हो गए। ये सब बतलाने में मेरी बुद्धि भले ही कंगाल रही हो किन्तु मेरा मनोरथ राजा है। अतः बारम्बार कहता हूँ कि:–

जली को आग कहते हैं–बुझी को राख कहते हैं।
बुझी राख को जो रज बना दे–उसे गुरूदेव कहते हैं।।

जय गुरूदेव

वैराग्य

किसी गृहस्थ के यहाँ एक विरक्त साधु भोजन करने आये। उनके लिए गृहस्थ ने खीर–जलेबी, लड्डू, बरफी, पूरी–साग आदि तैयार करवा कर परोसा। उस भोजन सामग्री को देखकर उन्होंने कहा–साधुओं और विरक्तों योग्य नहीं है, उनको ऐसा भोजन नहीं देना चाहिये। उनको तो रूखी–सूखी रोटी अच्छी लगती है। यह कहकर भोजन नहीं किया और वहाँ से जाने लगे। जाते समय गृहस्थ उनको बढ़िया ऊनी चादर देने लगे, तब वे बोले–हमें इसकी आवश्यकता नहीं। और बहुत अनुरोध करने पर भी उसको नहीं लिया। तब उस गृहस्थ का उनमें श्रद्धा–विश्वास पहले की अपेक्षा अधिक हो गया।

इससे समझना चाहिये कि यदि वैराग्य है तो वैराग्य के साथ सारे गुण अपने आप ही आ जाते हैं। किन्तु किसी में विद्या और गुण भी हैं तो वे गुण वैराग्य के बिना स्थायी नहीं रह सकते। अतः जहाँ वैराग्य है, वहाँ सब कुछ है। इसलिए साधक को संसार के समस्त भोगों से, शरीर से, सम्पत्ति से ओर परिवार से–सबसे तीव्र वैराग्य करनी चाहिए। महर्षि पंतजलि जी ने समाधि की सिद्धि के लिए अभ्यास और वैराग्य–ये दो साधन बतलाकर वैराग्य के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है–

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यं।

●●●

SIDDHYOG

POSTAL Regd. No. DAG-[illegible]

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

प्रेषण कार्यालयः

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सलाई (एत्मादपुर) आगरा (उ०प्र०)

स एव काले भुवनस्य गोप्ता, विश्वाधिपः सर्व भूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च, तमेव ज्ञात्वा मृत्युपाशां छिनत्ति॥

अर्थात् वही समय पर समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करने वाला, समस्त जगत का अधिपति और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है। जिसमें वेदज्ञ, महर्षि गण और देवता लोग भी ध्यान संलग्न हैं। उस परमदेव परमात्मा को जानकर ऐसे ही ध्यान द्वारा मनुष्य मृत्यु के बन्धनों को काट डालता है।